IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

तैत्तिरीयोपनिषद् का समीक्षात्मक अध्ययन

[1]सरस्वती कुमारी

[1]शोध–छात्रा

[1]संस्कृत विभाग

[1]ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सारांश : उपनिषद् साहित्य से वैदिक साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। इसे श्वेदान्तश नाम दिया जाता है। वेद के अन्तिम भाग होने के कारण तथा सारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादक होने से उपनिषद् ही श्वेदान्तश के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार भारतीय तत्त्वज्ञान तथा धर्मसिद्धान्त के मूल स्रोत होने का श्रेय एवं गौरव इन्हीं उपनिषदों को उपलब्ध है। वस्तुतः उपनिषद् वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जहाँ से ज्ञान की अनेकानेक नदियाँ निकलकर इस पुण्यभूमि में मानव मात्र के ऐहिक कल्याण एवं आमुष्मिक मंगल के लिए निरन्तर प्रवाहित होती हैं। वैदिक धर्म की मूल तत्व की व्याख्या करने वाली प्रस्थानत्रयीं (उपनिषद्–गीता–ब्रह्मसूत्र) में उपनिषद् ही है। ये उपनिषद् समस्त भारतीय दर्शनों के सांख्य एवं वेदान्त आदि के मूल ग्रन्थ है। गीता तथा ब्रह्मसूत्र भी उपनिषद् पर ही अवलम्बित हैं। इसी लिए भारतीय संस्कृति से उपनिषद् का अटूट संबंध है। इनके अध्ययन से, पठन–पाठन से तथा मनन करने से भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक रूप का सही परिचय मिलता है।

Index Terms **-** उपनिषद्, वैदिक वाड्.मय, तैतीरीय उपनिषद्, वेद, संहिता।

वैदिक वाड्.मय में आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों के मध्यवर्ती है। ये ब्राह्मण ग्रन्थों की ही भाषा शैली पर लिखे गये हैं। संहिता में मन्त्रों का संकलन है। ब्राह्मण ग्रन्थ उन मन्त्रों के व्याख्या ग्रन्थ है। इसमें भिन्न –भिन्न दृष्टियों से मन्त्रों की व्याख्या की गयी है और याज्ञिक दृष्टि से उनका विनियोग बतलाया गया है। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ कर्मकाण्ड प्रधान हैं। आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण और उपनिषद् के बीच का सम्बन्ध है। जहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञिक विधि विधान है वहीं उपनिषद् में आत्मा व परमात्मा विषयक ज्ञान का प्रतिपादन हुआ है। उपनिषद् ग्रन्थों में प्रतिपादित आत्मा व परमात्मा से सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। ब्राह्मण कर्म के प्रतिपादक ग्रन्थ है और उपनिषद् ज्ञान का। आरण्यक ग्रन्थों का अध्ययनाध्यापन नगरों या ग्रामों से दूर जंगलों में शान्त स्थान पर होता था इसलिए ये आरण्यक कहलाए। भारतीय आश्रम व्यवस्था के समीप ब्राह्मण ग्रन्थ, गृहस्थाश्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ, वानप्रस्थाश्रम में आरण्यक ग्रन्थ तथा सन्यासाश्रम में उपनिषद् ग्रन्थों का अध्ययन विहित है। वानप्रस्थ व्यक्ति जंगलों में जाकर आरण्यक ग्रन्थों का ही अध्ययन और मनन करता था। आरण्यक ग्रन्थों का प्रारम्भ बाह्मण ग्रन्थों के समान है तथापि उनके वर्ण्य विषय में सामान्य अन्तर दिखलायी पडता है। इनका विषय घामक दृष्टान्तों या रूपकों के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन में बदल गया सामान्य रूप से धार्मिक क्रियाकलाप और रूपक वाले भाग को ही आरण्यक कहते थे तथा दार्शनिक भाग उपनिषद कहलाते। तथापि उन दोनों में समन्वित दिखलायी गई थी।

वेदों के समान मानव जीवन को भी सौ मानकर ऋषियों ने चार भागों में विभक्त किया था, जिसे आश्रमव्यवस्था के नाम से जाना जाता है। वेदों के समान आश्रम भी चार है। ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा प्राप्ति का आश्रम था। इस आश्रम में व्यक्ति सभी वेदों के अलग–अलग संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ और उपनिषद् ग्रन्थ है। शाखा भेद के कारण उनमें अनेकता होती हैं। तैत्तिरीयारण्यक कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित है। कृष्णयजुर्वेद की संहिताओं से सम्बन्धित एक ही ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध है जो तैत्तिरीय ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है। तैत्तिरीयारण्यक तैत्तिरीय–ब्राह्मण ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग अथवा पूरक है जो कृष्णयजुर्वेदियों के लिए वानप्रस्थ में पठनीय है।

तैत्तिरीयोपनिषद् का विभाजन क्रम

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता के ब्राह्मणग्रन्थ के अन्तिम भाग को श्तैत्तिरीय आरण्यकश कहते है। इस आरण्यक में दस प्रपाठक हैं, जिनमें सात से लेकर नौ तक के प्रपाठकों को श्तैत्तिरीय उपनिषद्श भी कहते हैं। इन तीनों प्रपाठकों को क्रमशः शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवली तथा भृगुवल्ली कहा जाता है। प्रथम शिक्षावल्ली में ओंकार माहात्म्य के साथ–साथ धार्मिक विधानों का वर्णन हआ है। द्वितीयवल्ली में ब्रह्मतत्त्व का विवेचन तथा तृतीय वल्ली में वरुण द्वारा अपने पुत्र को उपदेश दिया गया है। आरण्यक के सप्तम प्रपाठक का नाम है संहितोपनिषद्, जो यहाँ शिक्षावल्ली के नाम से प्रचलित है। आरण्यक का वारुणोपनिषद् (प्रपाठक आठ और नव) यहाँ ब्रह्मावल्ली और भृगुवल्ली के नाम से प्रसिद्ध है।

अतः ब्रह्मविद्या की दृष्टि से वारुणी उपनिषद् की ही प्रधानता है, किन्तु चित्त की शुद्धि तथा गुरुकृपा की प्राप्ति के निमित शिक्षावल्ली का भी गौण रूपेण उपयोग है। इसमें कई प्रकार की उपासना तथा शिष्य और आचार्य संबंधी शिष्टाचार का कथन हुआ है। ब्रह्मानन्दवली में ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है, इसके बाद भृगुवल्ली से ब्रह्मप्राप्ति का मुख्य साधन श्पंचकोश–विवेकश वरुण तथा भृगु के परस्पर वार्तालाप से वर्णित है।

शिक्षावल्ली में शिक्षा की समीक्षा

शिक्षावल्ली के प्रारंभ में शान्ति–मंत्र की व्याख्या की गई है। इसमें भिन्न–भिन्न शक्तियों के अधिष्ठाता परब्रह्म परमेश्वर की भिन्न–भिन्न नाम और रूपों में स्मृति करते हुए उनसे प्रार्थना की गई है कि समस्त आधिदैविक, आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक शक्तियों के रूप में उनके अधिष्ठाता मित्र वरुण आदि देवताओं के रूप में जो सबके आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर हैं वे सब प्रकार से हमारे लिए कल्याणमय हो। हमारे उन्नति के मार्ग में और अपनी प्राप्ति के मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न न आये। ब्रह्म के जिज्ञासु द्वारा ब्रह्म विद्या के विघ्नों की शान्ति के लिये वरुण देवता को नमस्कार एवं वन्दन किया गया क्योंकि समस्त कर्मो का फल वायु के अधीन होने के कारण ब्रह्म वायु है, प्रत्यक्ष ब्रह्म है। उनको ही ऋतु अर्थात् श्शास्त्र एवं अपने कर्तव्यानुसार बुद्धि में सम्यक् रूप निश्चित किया हुआ आप भी कहा गया है। सत्य भी उनको कहा गया है क्योंकि वाक् और शरीर से सम्पादन किया हुआ उक्त अर्थ ही सत्य है, वह भी उन्हीं के अधीन है!

इस प्रकार वायु संज्ञक सर्वात्मा वहां की स्तुति की गई है कि विद्यार्थी को विधा से युक्त करके उनकी रक्षा करें। आचार्य को वक्तृत्व सामर्थ्य से युक्त करके उनकी भी रक्षा करने की प्रार्थना की गई है। तीन बार □ शान्ति कहने का भाव यह है कि आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों की सर्वथा उपशमन हो जाये। भगवान चूँकि शान्ति स्वरूप हैं, अतरू उनके स्मरण से सब प्रकार शान्ति सुनिश्चित है। ऋऋऋऋ वेद मंत्रों के उच्चारण में उदात्त आदि स्वरों का ध्यान रखना और कहाँ कौन–सा स्वर है इसका यथार्थ ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि मंत्रों में स्वर भेद होने से उनका अर्थ बदल जाता है तथा अशुद्ध स्वर का उच्चारण करने वालों को अनिष्ट का भागी होना पड़ता है। वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम तथा सन्धि ये सभी शिक्षा की सार वस्तुएँ हैं। अतरू इनका संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

वर्ण – अ, आ, आदि। स्वर – उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि वैदिक स्वर हैं। मात्रा – ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि।

बल – इसका अर्थ है प्रयत्न अर्थात वर्णोच्चारण में लगने वाली प्राण शक्ति, अर्थात् वर्णो के उच्चारण में उनकी ध्वनि को व्यक्त करने में जो प्रयास करना पड़ता है, वही बल अथवा प्रयत्न कहलाता है। प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं।

(1) **आभ्यान्तर** – स्पृष्ट, ईषत–स्पृष्ट, विवृत, ईषत–विवृत, संवृत।

(2) बाह्य – विवार, संवार, श्वास, नाद घोष, अघोग, अल्पप्राण, महापाण, मारा, अनुदात्त और स्वरित।

साम– मध्यम वृत्ति से उच्चारण करने की विधि। ' सन्तान – सन्तान शब्दों की मिलन प्रक्रिया है, इसको संहिता भी कहते है। स्वर, व्यंजन, विसर्ग अथवा अनुस्वार आदि अपने परवर्ती वर्ण के संयोग से काहीं–कहीं नूतन रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार वर्णों के संयोग जनित चिकृ त भाव संधि कहलाता है। यहाँ शिक्षा को ही शिक्षा कहा गया है। शिक्षा उसे कहते है जिसमें वर्ण आदि का उच्चारण सीखा जायें अथवा जो सीखें जायें वे वर्ण ही शिक्षा हैं।

संहितोपासना का पंचविध – महासंहिता में संहिता संबंधी उपासना का विवेचन किया गया है। संहिता में पूर्ववर्ती वर्ण (पहले वाला) और परवर्ती वर्ण (बाद वाला) के मध्य में सन्धान (सन्धि) होता है। इस उपासना के अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिविद्य, अधिप्रज और अध्यात्म–ये पाँच अधिकरण

अधिलोक में दृष्टि का निरूपण किया गया है। पृथ्वी अर्थात् यह लोक ही पूर्ववर्ती वर्ण है। यानि पूर्व वर्ण के स्थान पर पृथ्वी को देखना चाहिए। स्वर्ग (धुलोक) लोक संहिता का परवर्ती वर्ण है। अन्तरिक्ष (आकाश) इन पृथ्वी एवं स्वर्ग लोक की संधि है। वायु इसका संधान अर्थात् संयोजक है। प्राण वायु द्वारा पृथ्वी एवं स्वर्ग लोक को संबंध किया जाता है। अधिलोक उपासक को संहिता में इस प्रकार दृष्टि करनी चाहिए।

अपिज्योतिष विषयक संहिता में पर्ववर्ती वर्ण अग्नि है। क्योंकि भूतल (पथ्या) पर सुलभ है। धुलोक परवर्ती वर्ण अर्थात बाद वाला है क्योंकि सूर्य ऊपर के लोक में प्रकाशित है मेघ संधि है, क्योंकि वह इन दोनों से उत्पन्न होता है। विद्युत शक्ति ही संधान है। उक्त वर्ण में ज्योतिषयों के संयोग से नाना प्रकार के भौतिक पदार्थो की विभिन्न अभिव्यक्तियों के विज्ञान का रहस्य समझाया गया है। अधिज्योतिष उपासक को इस संहिता में ऐसी दृष्टि रखनी चाहिए। हा अधिविद्य विषयक संहिता में गुरु पहला वर्ण है, विद्याभिलाषी शिष्य दूसरा वर्ण है। इन दोनों की संधि से अर्थात् गुरु एवं शिष्य के मिलने से उत्पन्न होने वाली विद्या–ज्ञान यहाँ संधि है। गुरु का उपदेश एवं शिष्य का उस उपदेश को धारण करना संधान है। इस रहस्य को समझ कर जो शिष्य गुरु की सेवा करता है, वह विद्या प्राप्त कर विद्वान हो जाता है। अधिप्रज संहिता में प्रजा का वर्णन करने के बाद संतानोत्पत्ति के रहस्य को स्पष्ट किया है। इसमें माता पूर्ववर्ण है, पिता परवर्ण है। इन दोनों वर्गों की संधि से अर्थात् माता एवं पिता के संयोग से उत्पन्न सन्तान संयुक्त रूप है। नियम पूर्वक संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से माता–पिता द्वारा किया गया

सहवास संधान है। इस प्रकार जो मनुष्य इस रहस्य को समझकर सन्तानोत्पति की इच्छा से धर्मयुक्त स्त्री से सहवास करता है वह श्रेष्ठ सन्तान को प्राप्त करता है। अध्यात्मक संहिता में आत्म–विषयक अर्थात् शरीर विषयक संहिता का वर्णन है। शरीर का प्रधान अंग मुख है। अतः इसके विभिन्न अवयवों को संहिता के विभाग रूप में वर्णन किया गया है।

माधज्योतिष विषयक संहिता में पूर्ववान अति है। जयोनि कला (पृथ्वी) पर सुलभ है। सुलोक परवता वर्ण अशात नाद नाला है योनिम सूरी ऊपर के लोक में प्रकाशित है मेध संधि है, क्योंकि वह इन दोनों से सत्पन्न होता है। विद्युत शक्ति ही संधान है। उक्त वर्ण में ज्योतिषयों के संयोग से नाना प्रकार के गौतिक पदार्थों की विभिन्न अभिव्यक्तियों के विज्ञान का रहस्य समझाया गया है। अधिज्योतिष श्उपासक को इस संहिता में ऐसी दृष्टि रखनी चाहिए। अधिविध विषयक संहिता में गुरु पहला वर्ण है, विद्यामिलापी शिष्य दूसरा वर्ण है। इन दोनों की संधि से अर्थात् गुरु एवं शिष्य के मिलने से उत्पन्न होने वाली विद्या–ज्ञान यहाँ संधि है। गुरु का उपदेश एवं शिष्य का उस उपदेश को धारण करना संधान है। इस रहस्य को समझ कर जो शिष्य गुरु की सेवा करता है, वह विद्या प्राप्त कर विद्वान हो जाता है। अधिप्रज संहिता में प्रजा का वर्णन करने के बाद संतानोत्पत्ति के रहस्य को स्पष्ट किया है। इसमें माता पूर्ववर्ण है, पिता परवर्ण है। इन दोनों वर्गों की संधि से अर्थात् माता एवं पिता के संयोग से उत्पन्न सन्तान संयुक्त रूप है। नियम पूर्वक संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से माता–पिता द्वारा किया गया सहवास संधान है। इस प्रकार जो मनुष्य इस रहस्य को समझकर सन्तानोत्पति की इच्छा से धर्मयुक्त स्त्री से सहवास करता है वह श्रेष्ठ सन्तान को प्राप्त करता है। अध्यात्मक संहिता में आत्म–विषयक अर्थात् शरीर विषयक संहिता का वर्णन है। शरीर का प्रधान अंग मुख है। अतः इसके विभिन्न अवयवों को संहिता के विभाग रूप में वर्णन किया गया है। जबड़ा पूर्व वर्ण जर का जाबमा परन है। इन दोनो मध्य भाग में इनके संयोग से नियत होने वाली गाणी संधि है और जिला वाणी रूप संधि के प्रकट होने के कारण समान है। नोकि जहा के निगा मनुष्य कोई शब्द नहीं बोल सकता है। वाणी में विलक्षण शक्ति है। इसमें शारीरिक एवं आत्म विषयक शक्ति उन्नति करने का समय है। उचत रहस्य को समझकर जो मनुष्य वाणी का यथायोग उपयोग करता है, वह अभीष्ट फला भाषा करने में समर्थ हो जाता है। अर्थात् वाणी के द्वारा प्रार्थना करके अपने शरीर के पोषण के लिए सामग्री प्राप्त कर सकता है। आत्मोन्नति के लिए ओंकार रूप परमेश्वर के नाम जप से परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

उक्त पाँच महासंहिता के उपासना से इस प्रकार फल मिलता है। अधिलोक संहिता के ज्ञान से स्वर्ग लोक से संबंध होने का फल मिलता है। अधिज्योतिष संहिता के ज्ञान से भौतिक उन्नति के साधन का ज्ञान होता है। अधिविध संहिता के ज्ञान से विद्या प्राप्त कर विद्वान हो जाता है। अधिप्रज संहिता के ज्ञान से श्रेष्ठ सन्तान को प्राप्त करता है। अध्यात्म संहिता के ज्ञान से शारीरिक एवं आत्मोन्नति कर सकता है। श्रुति में समस्त संहिताओं के ज्ञान का सामूहिक फल बताया गया है। श्रुति ईश्वर वाणी है। अतः इसका रहस्य समझकर श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उपर्युक्त उपासना करने से निश्चय ही वे सभी फल प्राप्त हो सकते हैं। जिनके विषय में ऊपर बताया गया है।

मोक्ष साधन की समीक्षा

आत्मा जब परमपद को प्राप्त करती है तब वहाँ उसे न तो सुखानुभूति होती है और न दुःखानुभूति ही वहाँ केवल शाश्वत सुख है अमरता का साम्राज्य है। यहाँ जन्म–मरण के बन्धन से आत्मा जाती है। आत्मा की इस अमतावस्था को उपनिषदों में मोक्ष कहा गया है। उपनिषदों में ज्ञान को मोक्ष का साधन बताया गया है– ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। क्योंकि ज्ञान से अविद्या (अज्ञान का नाश होता है। इस अविद्या का विनष्टीकरण ही मोक्ष है अविद्यास्तगयो मोक्षः। औपनिषदिक चिन्तन के आधार पर जब आत्मा परब्रह्म का साक्षात्कार कर आत्म स्वरुप का ज्ञान प्राप्त कर लेती है तो उसकी स्वरुप स्थिति ही मोक्ष कहलाती है– आत्मनः स्वरुपेण अवस्थानम् मोक्षनम्। मुक्ति का साधन विद्या या ज्ञान है। विद्या के द्वारा ही भगृतत्व की प्राप्ति होती है– विद्यामृतमश्नुते। यह अमृतत्व की प्राप्ति ही तो जन्म और मरण चक्र से मुक्ति है। इसे ही संसार कहा जाता है। इससे भिन्न अमृतत्व अर्थात् मोक्षावस्था है। इस अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर पुनः संसार की प्राप्ति नहीं होती– न पुनरावर्तते। जिन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार ज्ञान हो जाता है जो अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है उसके हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जाती है। इसके समस्त संशय दूर हो जाते हैं और वह ब्रह्ममय हो जाता हैं।

ब्रहानन्दवल्ली का नामकरण समीक्षा

ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्म विद्या का वर्णन किया गया है। श्ब्रहाविदाप्नोति परम्श वाक्य ही सम्पूर्ण ब्रहा विद्या का बीज है। ब्रहा और ब्रहा को जानने वाले के स्वरूप का विचार ही तो ब्रह्म विद्या हैं। और ब्रह्मा वेत्ता की प्राप्ति ही उसका फल है। अतः वस्तुतः यह जतिन पाल सहित ब्रा विद्या का निरूपण करने वाला है आगे का ग्रन्थ सूत्रभूत मकी ही व्याख्या करने वाला है। इसमें ब्रह्म का विलक्षण निरूपण करके उसकी उपलब्धि के लिए पंच कोश का विवेचन करने के अभिप्राय से पक्षी के रूपक द्वारा पाँचों कोशों का वर्णन किया गया है। ... सत्संज्ञक ब्रह्म से जगत कि उत्पत्ति दिखाकर असत् से सत् की उत्पत्ति भताई गयी है। यहाँ असत् का अर्थ अभाव न होकर अव्याकृत ब्रह्म है। को ब्रह्मनिष्ठ की अभय प्राप्ति का निरूपण करके उसके आनन्द की सर्वोत्कृष्टता का वर्णन किया है। । इसके पश्चात् हृदय पुण्डरीकस्थ पुरुष का आदित्य

मण्डलस्थ पुरुष के – साथ अभेद करते हुए यह बताया गया हैं कि जो दोनों का अभेद जानता हैं वह इस लोक अर्थात् दृष्ट–अदृष्ट विषय समूह से निवृत्त होकर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय आत्मा को प्राप्त हो जाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म की समीक्षा –

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म के अनुसार ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानसम्पन्न और अनन्त है। जो पदार्थ जिस रूप में निश्चय किया गया है। उसमें व्यामचरित न होने के कारण वह सत्य कहलाता है। चूँकि भगवान में किसी प्रकार का दोष न होने के कारण वे सत्य है। वे नित्य सत्य हैं, क्योंकि किसी भी काल में उनका अभाव नहीं होता। अतरू श्सत्य ब्रह्मश यह वाक्य ब्रह्म को विकार मात्र से निवृत करता है। ज्ञान प्राप्ति यानि अवबोध (शिक्षा बोध) को कहत है। यह शब्द भाव वाचक हैं। ब्रह्म में अज्ञान का लश भी नहीं है। अतः वह ज्ञान स्वरूप है। ब्रह्म अनन्त है, क्योंकि वे किसी देश–काल–सीमा से अतीत हैं। अर्थात् सीमा रहित है। जो किसी से भी विभक्त नहीं होता, वह अन्नत है। परब्रह्म परमात्मा सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त है। इस प्रकार उनके स्वभाव बोधक लक्षण बताये गये हैं। अब उनके प्राप्ति स्थान पर चर्चा की जा रही है।

पंचकोश की समीक्षा

सर्वप्रथम परमात्मा से आकाशतत्त्व प्रकट हुआ। उसके बाद आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियां, औषधियों से अन्न तथा अन्न से पुरुष का विकास हुआ। पुरुष में ही अन्न का रस विद्यमान है। आत्मा उसके मध्य भाग, अर्थात हृदय में निवास करती है। ब्रह्मवेत साधक हृदय में स्थित इसी श्आत्माश की उपासना करके श्परब्रह्मश तक पहुंचता है। यहाँ शरीर में स्थित पांच– श्अन्नमयश, श्प्राणमयश, श्मनोमयश, श्विज्ञानमयश और श्आनन्दमयश कोशों का महत्त्व दर्शाया गया है।

यह मनुष्य शरीरधारी पुरुष को पक्षी के रूप में कल्पना की गई है। इस मनुष्य का जो सिर है। वह मानो पक्षी का सिर है, उसकी दाहिनी भुजा मानो पक्षी का दाहिना पंख है। बायी भुजा पक्षी का बायाँ पंख है। मनुष्य के शरीर का मध्य भाग पक्षी के शरीर का मध्य भाग है। मनुष्य शरीर के दोनों पैर मनो पक्षी के पूंछ और पैर हैं। भामय कोश में अन्न की महिमा का बडे ही रोचक ढंग से वर्णन किया गया है। उस पृथ्वी लोक में निवास करने वाले समस्त प्राणी अन्न से ही उत्पन्न हुए है, तात्पर्य यह है कि अन्न रस के परिणाम रूप रज एवं वीर्य से ही उनके शरीर निर्मित होते हैं। उसी से उनकी वृद्धि होती है, पालन–पोषण होता है। एवं जीवित रहते हैं और अन्त में जीवन रूपी वृत्ति की समाप्ति होने पर वे अन्न में ही लीन हो जाते है। अर्थात् अन्न उत्पन्न करने वाली पृथ्वी में विलीन हो जाते समस्त प्राणियों के जन्म और मरण स्थूल शरीर के संबंध से होते हैं। स्थूल शरीर की उत्पत्ति अन्न से ही होती है, वही अन्न से वृद्धि प्राप्त करता है, नौचित रहता है और अन्न के उद्गम स्थान पृथ्वी में ही विलीन हो जाता है। पर, शरीरों में रहने वाला जीवात्मा विलीन नहीं होता है। प्रत्युत् मरण–काल में नतप के साथ इस शरीर से उत्क्रमण कर दूसरे शरीर में चला जाता है।

इस प्रकार अन्न की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है, क्योंकि समस्त प्राणियों का अस्तित्व इसी पर निर्भर करता है। इस कारण इसको सर्वौषध रूप कहा जाता है। सम्पूर्ण प्राणियों के देह के सन्ताप को शान्त करने वाला कहा गया है। ष्रू प्राणमय कोश में प्राणमय शरीर की पक्षी के रूप में कल्पना की गई है, जैसे–जिस प्रकार शरीर के अंगों में मस्तक श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पाँचों प्राणों में गाल प्राण ही श्रेष्ठ है। अतः प्राण ही उसका सिर है। व्यान उसका दाहिना पंख अपान वायाँ पंख है। आकाश शरीर का मध्य भाग है। क्योंकि आकाश में लोयाय की भाँति सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त श्समान वायुश आत्मा है। यह सम्पूर्ण शरीर में समान भाव से रस पहुँचाकर प्राणमय शरीर को पुष्ट करता है। पृथ्वा पूछ एवं आधार है, क्योंकि अपान वाय को रोककर रखने वाली पृथ्वी का आधिदैविक शक्ति ही इस प्राणमय पुरुष का आधार है। मनुष्य की काया में समाहित उन सभी कोशों का आकार स्थल काया के अनुरूप ही होता है। मनुष्यों को पक्षी मानकर उसके सिर, पंख मध्य भाग एवं मूंछ की संगति बिठात हुए पाँचों कोशों का वर्णन किया गया है।

शरीर अन्न के रस से बनें, स्थूल शरीर से भिन्न उस स्थूल शरीर में रहने वाला एक और शरीर है जिसको ष्प्राणमयष् भी कहा जाता है। उस प्राणमय से अन्नमय शरीर पूर्ण है। अन्नमय शरीर स्थूल की अपेक्षा प्राणमय शरीर सूक्ष्म होने के कारण यह अन्नमय शरीर के अंग–अंग में व्याप्त है। अतः इसी कारण से प्राणमय शरीर पुरुष के आकार का ही है। यह स्वतः पुरुषाकार नहीं हैं। प्रत्युत् अन्न रसमय पुरुषाकार के अनुरूप साँचे में ढली हुई प्रतिमा के समान यह प्राणमय कोष भी पुरुषाकार है। मनोमय कोश, संकल्पात्मक एवं विकल्पात्मक, अन्तरूकरण का नाम श्मनश है। इसके तद्रूप होने के कारण इसे श्मनोमयश कहते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि यह प्राणमय पुरुष में व्याप्त हैं इसलिए यह मनोमय शरीर भी पुरुष के आकार का ही है। उसकी पक्षी के रूप में इस प्रकार कल्पना की गयी है–ष्उस मनोमय पुरुष का मानों यजुर्वेद ही सिर है. ऋग्वेद की दाहिना पंख है, सामवेद बायाँ पंख है, आदेश (विधि वाक्य) मानो शरीर का मध्य भाग है तथा अथर्वा एवं अंगिरा ऋषियों द्वारा देखे हए अथर्ववेद के मंत्र ही पूँछ एवं आधार है। उक्त वर्णन से अधिकांश साधकों के मन में एक शंका उत्पन्न होती है कि वेदों को मनोमय शरीर का अंग बताने बैज्ञानिक एवं शुनितयुनत से किया नानि जिगोमानी कोई नियत संख्या में हो तथा जिला पानं गति

मिनो का नाम श्यज्ञश है। ऐसे मौको पातको राशन लगाकर आतुति दी जाती है। यज्ञ आदि में मन को मोसो पाता है। गो में सिर । प्रधान हैं, अतः यजुर्वेद को सिर बताया गया है।

वेद मंत्रों के वर्ण, पर एन चाय आदि को उच्चारण को पहले गन संकल्प उठता हैं संकल्पात्मक शक्ति के द्वारा मनोगय पुरुष को साथ वेदांगो का घनिष्ठ संबंध हैं। अतः इन्हें मनोगय पुरुष के ही गो गो स्तवन एवं गायन होता है। चूंकि यह यजुर्वेद के मंत्रों की अपेक्षा आप्रधान है। अतः इनको गुजाओं का रूप दिया गया है। आदेश (विधि) वाक्य वेदों के मध्य में है, अतः इसको मनोमय पुरुष के अंगों का मध्य भाग कहा जाता है। अथर्ववेद को गूंछ एवं प्रतिष्ठा कहा गया है। क्योंकि इस वेद के मंत्र शान्ति एवं पौष्टिक कर्मो के साधक मंत्र माने जाते हैं।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि वेद मंत्रों का मनोमय पुरुष के साथ संकल्पनात्मक वृत्ति के द्वारा इन सबके साथ नित्य संबंध है।

विज्ञानमय कोश

वेदों के अर्थ के विषय में जो निश्चयात्मिका बुद्धि है, उसी का नाम विज्ञान है। यह अन्तरूकरण का निश्चय धर्म हैं। प्रमाण स्वरूप निश्चय विज्ञान से अर्थात निश्चयात्मिक बुद्धि से निष्पन्न (पूरा) होने वाला आत्मा विज्ञानमय है। यह विज्ञानमय शरीर मनोमय शरीर से भी सक्षम है। अतः मनोमय शरीर इस विज्ञानमय शरीर में पूर्ण हैं। वह इस मनोमय शरीर में सर्वत्र गया है। मनोमय अपने से पहले वाले सामानक एक अजमय में माना है। जर मह विज्ञानमय जीवात्मा समस्त शारीर में ब्याज है। विज्ञानमम पुरुष बुद्धिमय गुफा में निवास करने वाला और उसमें तदाकार का बना हुआ आत्मा हो है। गीता के 13 – 32 में भी स्पष्ट कहा गया है कि जीजमा रूम क्षेत्र शारीर रूप क्षेत्र में सर्वत्र स्थित है। मनोमय पुरूष में व्याप्त होने के कारण विज्ञानमा आत्म्स भी निश्चय ही पुरुषाकार है। उस विज्ञानमा पुरुष के अंगों को पी के रूप में कापना निम्नवत् की गई है। विज्ञानमय पुरुष का सिर है। अदा कहते है बुद्ध को निश्चित विश्वास रूप वृत्ति को। निश्चयात्मिका बुद्धि समन्न पुरुष को सबसे पहले कर्तव्य कर्म में श्रद्धा ही उत्पन्न होती है यह, दुइ विश्वास हो जो विश्व में उन्नति का कारण है। परमात्मा प्राप्ति में तो सबसे पहले और सबसे अधिक इसकी ही आवश्यकता होती है। अतः अद्धा को विनमय पुरुष का सिर कहना उचित ही हैं। ऋतु अर्थात् सनातन सत्य उसका दाहिना पंख है, सत्य प्रत्यक्ष, सत्य उसका वायाँ पंख हैं, ध्यान द्वारा परमात्मा के साथ संयुक्त रहना अर्थात योग उसका मध्य भाग है और श्महःश (व्याहति) ब्रह्म का स्वरूप नाम होने के कारण विज्ञानमय शरीर का पूंछ और आधार हैं। क्योंकि परमात्मा ही जीवात्मा का परम आश्रय है क्योंकि कारण ही कार्य वर्ग की प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हुआ करता है। महत्तत्व ही सम्पूर्ण बुद्धि के सम्पूर्ण विज्ञानों का कारण है। इसलिए यह विज्ञानमय आत्मा की प्रतिष्ठा है। जानन्दमय कोश : आनन्दमय परमेश्वर के अंगों की कल्पना पक्षी के स्पक में की गई है। जो इस प्रकार हैं– प्रिय भाव को उनका सिर बताया गया है। क्योंकि आनन्दमय परमात्मा सबके प्रिय है और सभी आनन्द चाहते है। षप्रियताश उन आनन्दमय परमात्मा का एक प्रधान अंश है। अतः इसको उनका प्रधान अंग सिर मानना उचित हैं। श्मोदश को दाहिना पंख कहा गया हैं। प्रिय पदार्थ की प्राप्ति से होने वाला हर्ष मोद कहलाता है। प्रमोद को बायाँ पंख कहा गाया है। प्रिय पदार्थ की प्राप्ति से होने वाला हर्ष जब अधिक मात्रा में बढ़ जाता है। तो वही श्प्रमोदश कहलाता है। परमात्मा का मध्य अंग आनन्द है। जिस समय अन्तरूकरण तमोगुण को नष्ट करने वाले तप, उपासना, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा के द्वारा जिनता जिनता निर्मलता को प्राप्त होता है। उतने ही स्वच्छ एवं प्रसन्न हुये उस अन्तरूकरण में विशेष आनन्द का उत्कर्ष होता है। वह आनन्द ही परमात्मा का मध्य अंग होता है जो प्रकृति (विकार रहित) ब्रह्म, सत्य, ज्ञान और आनन्द रूप है, जिसकी प्राप्ति के लिये पाँच कोशों का उपन्यास (विचार) किया गया है। जो उन सबकी अपेक्षा अन्तर्वर्ती है और जिसके द्वारा वे बस आत्मवान हैं। वह ब्रह्म ही उस आनन्दमय की पूँछ एवं प्रतिष्ठा है, अर्थात् आधार है। उपरोक्त वर्णन में जो पक्षी के रूपक में आनन्दमय परमेश्वर के अंगों की जो कल्पना की है, इस संदर्भ में स्वाभाविक रूप से एक शंका उत्पन्न होती है कि वेदों एवं शास्त्रों में परमात्मा को अवयव रहित कहा गया है, तो फिर उनके अंगों की कल्पना का क्या औचित्य? इसका समाधान ब्रह्मसूत्र के 3–3–12 से 3–3–14 तक के सूत्रों में स्पष्ट रूप से किया गया है। वहाँ कहा गया है कि अहा के विषय में ऐसी कल्पना केवल उनकी उपासना की सुगमता के आभप्राय से की गई है।

सदसद् ब्रह्म विचार

भूः भुवः स्वः – ये तीन व्याहातया ष महाचमस ऋषि के पुत्र को एक चौथी व्याहृति का ज्ञान था जिसे महः कहते है। श्महःश ही ब्रह्म है। वही आत्मा है। अन्य देवता उसके अंगभूत हैं। श्भूरूश का अर्थ है– यह लोक। श्भुवःश अन्तरिक्ष लोक है और श्स्वश स्वर्ग लोक है। – श्महःश का अर्थ है– आदित्य लोक। आदित्य से ही समस्त लोक वृद्धि को प्राप्त होते हैं। श्भूःश अग्नि है। श्भुवःश वायु है। श्स्वःश आदित्य है। श्महःश चन्द्र है। चन्द्र की ज्योति से ही सम्पूर्ण ज्योतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती है। श्भूःश ही ऋक् है। श्भुवःश साम है। श्स्वःश यजु है। श्महश ब्रह्म है। ब्रह्म से ही सम्पूर्ण वेद वृद्धि को प्राप्त होते है। श्भूरूश यही प्राण है, श्भुवःश अपान है। श्स्वःश व्यान है तथा श्महः अन्न है। अन्न से ही समस्त प्राण वृद्धि को प्राप्त होते है। इस प्रकार ये चार व्याहृतियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक चार चार प्रकार की है। जो 4 • 4–16 इन सोलह को जानता है वह ब्रह्म को जानता है।

हृदय के भीतर आकाश है, उसी में इस पुरुष का निवास है, वह मनोमय है, अमृतस्वरूप एवं हिरण्मय है। तालु के भीतर जो स्तन की तरह लटकता है, वह इन्द्र अर्थात् जीवात्मा की योनि है। यह जीव (इन्द्र) केशों का जहाँ अन्त है, वहाँ तक अर्थात् केशों के मूल भाग तक विभक्त होकर रहता है– वहाँ तक बरतता है। पुरुष प्राणप्रयाग के समय मूर्धा का भेदन करके श्भूःश इस व्याहतिरूप गाण में प्रतिष्ठित हो जाता है, इसी प्रकार श्भुवःश व्याहतिरूप वायु म यादा है। अर्थात् तदूप होकर लोक को व्याप्त कर लेता है।

ऋ श्स्वःश नामक व्याहति को आत्मसात् करने से आदित्य में तथा श्महःश नामक व्याहति का चिन्तन करने से तद्रूप होकर ब्रा में स्थित हो जाता है। इस प्रकार वह स्वराज्य प्राप्त कर लेता है। वह मन के प्रति (ब्रह्म) को प्राप्त कर लेता है। वह वाणी का स्वामी, चक्षु का स्वामी, श्रोत्र का स्वामी, और समस्त विज्ञान का स्वामी हो जाता है। इतना ही नहीं, वह इससे भी अधिक हो जाता है। वह आकाश को अपना शरीर बना लेता है, सत्य उसका आत्मा हो जाता है, प्राण हो जाता है। विश्राम स्थल आनन्द ही उसका मन हो जाता है, वह शान्तिस्वरूप एवं अमृतमय ब्रह्म हो जाता है।

ब्रह्मात्मैक्य दृष्टि की समीक्षा

आनन्द के एक मात्र केन्द्र अन्तर्यामी, जो मनुष्यों एवं सूर्य में भी व्याप्त है, उन परमानन्द स्वरूप परमात्मा को इस प्रकार जान लेता है, वह इस लोक से जाते समय अर्थात् मरने पर अन्नमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है। वह इस प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय को भी प्राप्त कर लेता हैं। क्योंकि जो सर्व अन्तर्यामी परमात्मा अन्नमय में व्याप्त था, वह इन सबमें भी व्याप्त है। इसलिए इन सब में परिपूर्ण, पूर्णरूप, सबके आत्मा, परम आत्मा स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त हो जाना ही इस फल श्रुति का तात्पर्य है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि केवल पृथ्वी सम्पत्ति आदि से उस आनन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं। उसके लिए समग्र व्यक्तित्व ही श्रेष्ठ होना चाहिए। पिछले मंत्रों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर आनन्द का उल्लेख किया गया है। ऋषि बार–बार स्पष्ट करते कि वह आनन्द उसी का प्राप्त हो सकता है जो ज्ञान सम्पन्न है त्याः मागनाओ से दूषित नहीं है। अज्ञानी हो हीन, अनित्य सुखों में ही भटक जाता ७, श्रेष्ठ आनन्द तक पहुँचता ही नहीं चाहता। जिस प्रकार छालों से पीड़ित जीभ स्वादिष्ट व्यंजनों का रस नहीं ले सकती, उसी प्रकार कामनाओं से ग्रस्त मन अतरूकरण श्रेष्ठ आनन्द की अनुभूति नहीं कर पाता।

भृगुवल्ली नामकरण की समीक्षा

भृगु नाम के ऋषि जो वरुण के पुत्र थे। उनके मन में ब्रह्म को जानने की अभिलाषा जाग्रत हुई। भृगुवल्ली में भृगु की ब्रह्म पर जिज्ञासा का सामाधान उनके पिता वरुण ने किया। तत्व ज्ञान को समझाकर उन्हें तपश्चर्या द्वारा स्वयं अनुभव करने का निर्देश दिया गया है। उन्होंने क्रमशः अन्न, प्राण, मन, विज्ञान एवं आनन्द को ब्रह्म रूप में अनुभव किया। तब वरुण ने उन्हें अन्नादि का दुरूपयोग न करके उसके सुनियोजन का विज्ञान समझाया। अन्त में भगवद् भाव प्राप्त साधक की स्थिति तथा उसके समता युक्त उद्गारों का उल्लेख है।

प्राणादि ब्रह्म विचार

भृगु ने अपने पिता के आदेशानुसार तप कर अनुभव किया कि ब्रह्म के लक्षण प्राण में पूर्णतया पाये जाते हैं, क्योंकि एक प्राणवान जीवित प्राणी से ही, उसी के सदृश्य दूसरा प्राणी उत्पन्न होता तथा सभी प्राण रहने तक जीवित रहते हैं। क्योंकि प्राण द्वारा ही अन्न ग्रहण किया है और उसके रस से समस्त शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है, जीवित रहता है। प्राण के शरीर से निकल जाने पर वह मृत हो जाता है। जितने भी मनुष्य, देवता, पशु आदि शरीरधारी प्राणी हैं, वे सब प्राण के आधार पर ही जीवित हैं। प्राण के बिना किसी के शरीर का कोई अस्तित्व ही नहीं हैं। प्राण के बिना शरीर कोई भी चेष्टा नहीं कर सकता है। प्राण ही सबका जीवन है, सबकी वायु है। प्राण केवल परिच्छिन्न रूप से अन्नमय कोश से ही आत्मवान नहीं है। प्रत्युत् मनुष्यादि जीव उसके अन्तर्वर्ती सम्पूर्ण पिण्ड में व्याप्त प्राणमय कोश से भी आत्मवान हैं।

अन्नरूप ब्रह्मोपासना के महत्त्व समीक्षण

जितने भी मनुष्य, देवता, पशु आदि शरीरधारी प्राणी हैं, वे सब प्राण के आधार पर ही जीवित हैं। प्राण के बिना किसी के शरीर का कोई अस्तित्व ही नहीं हैं। प्राण के बिना शरीर कोई भी चेष्टा नहीं कर सकता है। प्राण ही सबका जीवन है, सबकी वायु है। प्राण केवल परिच्छिन्न रूप से अन्नमय कोश से ही आत्मवान नहीं है। प्रत्युत् मनुष्यादि जीव उसके अन्तर्वर्ती सम्पूर्ण पिण्ड में व्याप्त प्राणमय कोश से भी आत्मवान हैं। सबकी आयु होने के कारण प्राण को ष्सर्वायुषष् कहा जाता है क्योंकि प्राण–प्रयाण के अनन्तर मृत्यु हो जाना प्रसिद्ध ही है। ऋऋऋ अतः जो लोग इस वाह्य असाधारण व्यावृत रूप से अर्थात् बाँटे हुये अन्नमय कोश से आत्म बुद्धि को हटाकर इसके अन्तर्वर्ती (सम्पूर्ण इन्द्रियों में अनुगत अर्थात् व्याप्त) प्राणमय कोश अर्थात् प्राण की ब्रह्म रूप से उपासना है. ये इस लोक में पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। अर्थात् पारा वश प्राप्त ६६ आयु से पूर्व अपमृत्यु से नहीं भरते। प्रश्नोपनिषद् के तीसरे प्रश्न के ग्यारहवें मंत्र में भी कहा गया है कि ष्जो मनुष्य इस प्राण के तत्व को जान लेता है, वह स्वयं अमर हो जाता है और उसकी प्रजा नष्ट नहीं होतीश, श्जो सर्वात्मा परमेश्वर अन्न से रस से बने हुए । शरीरधारी पुरुष का अन्तरात्मा है वही उस प्राणमय पुरुष का गी नावर्ती अन्तर्यामी आत्मा है। जो साधक अन्न की उपासना इस प्रकार करते

हैं। अर्थात् उसको ज्येष्ठ (प्राणियों से पहले उत्पन्न होने के कारण) और सर्वश्रेष्ठ (इसी में उत्पन्न होने, सी में विलीन होने के कारण) ब्रह्म रूप में उपासना करते हैं। उनको समस्त मा प्राप्त हो जाता है। उनको अन्न का अभाव नहीं रहता है।

अनादिद्वारा आतिथ्य विचार

इस संदर्भ में आचार्य उपदेश देते हैं रि ष्घर में आये हुये अतिथि का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए। इस व्रत का नियम से पालन करें। अतः केवल अपना तथा कुटुम्ब का पोषण करने के लिये ही नहीं, अपितु अतिथियों के लिये भी न्यायोचित उपाय से अधिक से अधिक अन्न का उपार्जन करें, जिससे सर्वथा अतिथि सेवा में तत्पर रहें। यदि अतिथि को अधिकाधिक श्रद्धा, आदर एवं प्रेम से भोजन कराया जायगा तो स्वयं को भी उसी भाव से अन्न प्राप्त होगा। यदि मध्यम स्तर के आदर एवं प्रेम से तिथि को भोजन कराया जायेगा तो उसी प्रकार से स्वयं को भी अन्न प्राप्त या इसी प्रकार यदि निम्न श्रेणी के आदर एवं प्रेम से अतिथि को भोजन दाया गया तो निश्चित ही उसी प्रकार के निम्न श्रेणी के आदर के साथ स्वयं का भी अन्न प्राप्त होगा। तात्पर्य यह है कि जिस भाव से अतिथि की भोजन आदि से सेवा करायी जायेगी, उसी भाव से अन्न प्राप्त होगा। क्योंकि जो जैसा बोता है वैसा ही वह काटता है। यह विधि का विधान है।

अन्नमयादिआनन्दपर्यन्तोपासना की समीक्षा

रसादिरूप से परिणत हुए अन्न से ही पृथिवी पर रहने वाले स्थावर और ज ३ गम रूप प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं और अन्न से उत्पन्न होने पर अन्न से ही जीवित रहती हैं– प्राण धारण करती है अर्थात् वृद्धि को प्राप्त करती हैं। अन्त में जीवन समाप्त होने पर अन्न में ही लीन हो जाती हैं। अन्न ही प्राणियों का अग्रज अर्थात् प्राणियों से पहले उत्पन्न हुआ है। इसी कारण यह सवौषध कहा जाता है। इस प्रकार वह सम्पूर्ण प्राणियों के देह के सन्ताप को शान्त करने वाला होता है। अन्नमय इत्यादि मनुष्य से इतर – जो प्राणी हैं, उनका भी कारण अन्न ही है अतः सम्पूर्ण प्रजा अन्न से उत्पन्न होने वाली, अन्न के द्वारा जीवित रहने वाली और अन्त में अन्न में ही लीन हो जाने वाली है। जो लोग अन्न की ब्रह्म के रूप में उपासना करते हैं, वे निश्चित रूप से सम्पूर्ण अन्न को प्राप्त करते हैं। आनन्दमय यह उपासना और कर्म का फल है, उसका विकार आनन्दमय कहलाता है। जो साधु युवा (शिष्ट युवक), अध्यायक (वेद का अध्ययन किया हुआ), आशिष्ठ (अत्यन्त आशावान),दृ ढिष्ठ (अत्यन्त दृढ़), बलवान् तथा सम्पूर्ण पथिवी का राजा हो जाने पर जो आनन्द होता है, वह एक मानुष का प्रकष्ट आनन्द है। मनुष्यों के ऐसे एक सौ आनन्द के समान उत्कृष्ट एक मनुष्यगन्धर्व का आनन्द होता है, वहीं आनन्द अकामहत श्रोत्रिय को प्राप्त होता है। मनुष्यगन्धवों का एक सौ आनन्द देवगन्धर्व के एक आनन्द के बराबर होता है। देवगन्धर्वो का सौ आनन्द नित्यलोक में रहने वाले पितृगण का एक आनन्द है और वहीं अकामहत श्रोत्रिय को भी प्राप्त होता है। चिरलोक निवासी पितृगण का सौ आनन्द आजान नामक लोकविशेष में रहने वाले देवताओं का एक आनन्द है। आजानज देवताओं का सौ आनन्द कर्म करके देवत्व प्राप्त करने वाले देवताओं का एक आनन्द है, वहीं अकामहत श्रोत्रिय को भी प्राप्त होता है। कर्मदेवताओं का सौ आनन्द इन्द्र का एक आनन्द है। इन्द्र का सौ आनन्द बृहस्पति के एक आनन्द के बराबर होता है। बृहस्पति का सौ आनन्द प्रजापति का एक आनन्द है। प्रजापति का सौ आनन्द ब्रह्मा के एक आनन्द के बराबर है। यह ब्रह्मा का आनन्द शाकामहत श्रोत्रिय को भी प्राप्त होता है। इस प्रकार इस तथ्य को जानने वाला गमयादि कोशों से निवृत्त होकर आनन्दमय आत्मा को प्राप्त करता है।

तैतीरीयोपनिषद एवं अन्य उपनिषद

उपनिषद् को पर्याय रहस्य भी कहा जाता है। जिसका अर्थ श्रहसि भवंश ।सज एकान्त में होनेवाला है। स्वयं. उपनिषदों में प्रयोग मिलता है। श्इति पितमंच इति रहस्यम्श आदि शब्दों का प्रयोग इन रहस्यात्मक सिद्धान्तों के सलिए किया गया है। आद्य आचार्य शंकर के कठोपनिषद गाय के प्रारम्प में इस पद का पाख्या करते हुए लिखा है कि ष्य इमां ब्रह्मविद्यामपयान्त्यात्ममावेन श्रद्धाभक्ति पुरः सराः सन्त स्तेशांगर्म जन्म जरारोगाद्य वर्ग विनाशयति पर वा ब्रह्म गमयति, अविद्या संस्कार कारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयति, इत्युनिषद् उपनिपूर्वस्य सदेरेमर्थ संस्मरणात्ष्।। कर्म से अविरूद्ध संहितादिविषयक उपासनाओं का सर्वप्रथम वर्णन किया गया है। उसके पश्चात व्याहृतियों के द्वारा स्वराज्यरूप फल देनेवाला हृदयस्थित सोपाधिक आत्मदर्शन कहा गया। किन्तु इतने ही से संसार के बीज का पूर्णतया नाश नहीं हो जाता। अतः सम्पूर्ण उपद्रवों के बीजभूत अज्ञान की निवृत्ति के निमित इस सर्वोपाधिरूप विशेष से रहित आत्मा का साक्षात्कार कराने के लिए श्ब्रह्मविदाप्नोति परम्श समझा गया है। आत्मा को सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, स्नायु से रहित, निर्मल अपापहत, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयम्भू कहा गया है। उसी ने नित्य प्रजापतियों के लिये यथायोग्य रीति से – अर्थो का विभाग करते हुए ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है

"स पर्यगांच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनिषी

परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।''

ऐतरेयोपनिषद् तथा तैत्तिरीयोपनिषद् में विषयगत वैषम्य

ऐतरेयोपनिषद् तथा तैत्तिरीयोपनिषद् दोनों में जहाँ विषयगत साम्य हैं वहां वैषम्य होना भी स्वाभाविक है। ऐतरेयोपनिषद् जहाँ ऋग्वेदीय ऐतरेयारण्यक का एक अंशमा है जो कि महर्षि ऐतरेय द्वारा प्रणीत है। यह अत्यन्त लघु कलेवर वाला तथा केवल तीन अध्यायों में

संयोजित है। इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय में सृष्टि का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में त्रिजन्म की मीमांसा प्रस्तुत की गई हैं, जो कि इस उपनिषद् को अन्य उपनिषदों से पूर्णतया अलग करती है। एतरेयोपनिषद् की संज्ञा मनीषियों ने मुख्यतया सृष्टिवक्ता विकासवादी उपनिषद् के रूप में की है। यह उपनिषद् लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीव दृष्टियों का समन्वय है। यह उपनिषद् एक ओर आत्मा, परमात्मा एवं गृष्टि विधान की सूक्ष्म रेखाओं का वर्णन करती है वहीं दूसरी ओर पुरुष की विजन्म कल्पना के आधार पर गर्भाधान जातककर्मादि संस्कारों के द्वारा लौकिकता का वर्णन करती है। ऐतरेयोपनिषद् का नामकरण ऐतरेय महिदास के नाम पर हुआ है श्इतराश शब्द श्इतरश से निष्पन्न है जिसका अर्थ है श्दूसराश। जिस प्रकार कुन्ती से कौन्तेय की व्युत्पत्ति हुई है उसी प्रकार मातृप्रधानसमाज के कारण इत्तरा पुत्र से ऐतरेय नाम पड़ा है। इसके तीनों अध्यायों को सृष्टिवाद, जीववाद एवं ब्रह्मवाद के नाम से जाना जाता है। पुर्नजन्म की परिकल्पना ऐतरेयोपनिषद् की अपनी मौलिक उद्भावना है। ऐतरेय उपनिषद् के अन्तिम अध्याय में जीव एवं आत्मा की अभिव्यंजना है। अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है जो स्वयं में अथाह ज्ञानराशि लपेटे हुए है। अद्वैत दर्शन के मूलतत्त्व की मार्मिक मीमांसा की गयी है, समस्त सचेतन तथा अचेतन सत्ताओं में एक ही सामान्य तत्त्व चौतन्य की अभिव्यक्ति है। इसमें ऐतरेयोपनिषद् में मानव शरीर की महत्ता एवं श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है। जिसकी पुनरूक्ति पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में होती है। ऐतरेयोनिषद् में मृत्यु आसन्न व्यक्ति का प्राण विदृति मार्ग से निकलना । अर्थात् जिस मार्ग से जीवात्मा ने पुरुष शरीर में प्रवेश किया था वह शुभ एवं श्रेष्ठ माना है। यह नवी कल्पना एकमात्र ऐतरेयोपनिषद् में ही है। इसमें वामदेव पाप जिन्होंने गर्भस्थ रहकर ही अपने बहुत से जन्मों का अनुभव बतलाया। जिसमें उन्होंने आत्माजान द्वारा ही इस बन्धन से मुक्ति का मार्ग बताता है।

शोध का उद्देश्य

जिस प्रकार, 'प्रयोजनमनुदिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते', बिना प्रयोजन्द्र से के बुद्धिहीन भी किसी कार्य में रूचि नहीं लेता, टीक उसी प्रकार समाज के हित के लिए, लोगों को उपनिषदात्मक ग्रन्थों के द्वारा ब्रह्म ज्ञान की दिशा में 5 प्रवत्त कराने के लिए उस प्रकार का प्ररोचक उपायमात्र है, जिस दाह का विक्रेताओं का सीपी के चमकीले टुकड़ों के विषय में क्रेताओं के प्रति यह कथन होता है कि श्बड़े अच्छे मोती हैं, जरूर खरीद लीजिएश। श्उस कविता अथवा वनिता से क्या प्रयोजन जो पद विन्यास मात्र से मन को नहीं हर लेतीश और गुणवान न होने पर भी कवियों की युक्ति कानों में मधुधारा बरसाती है। ठीक ही कहा गया है कि सौरभ का अनुभव न होने पर भी दूर से ही मालती माला दृष्टि का हरण कर लेती है ।

'किंवा कवितया राजन्! किंवा वनितया तया।
पदविन्यासमात्रेण मनोनापहृतं यया।।
अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णषु वमति मधुधाराम्।
अनवगतपरिमलापि च दृशं हरित मालती माला'।

किन्तु व्याकरण के जटिल नियमों से बद इस संस्कृत भाषा से मधुर–रसों – के अनुकूल केवल मधुर पदों का गुम्फन कठिन ही नहीय अपितु एक प्रकार से असम्भव सा ही है। परियोजना का प्रयोजन रसास्वादमूलक आनन्दातिशय ही है।

शोध की आवश्यकता

उपनिषदों के श्तैत्तिरीयोपनिषदश सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यन्त ही प्राचीन उपनिषद है। इस शोध प्रबंध के द्वारा मैं वैदिक संहिता, ब्राहाण, आरण्यक, उपनिषद् तथा अन्य ग्रन्थों का आश्रय लेकर तैत्तिरीयोपनिषद् की विशिष्टता का दर्शना चाहती हूँ। शिक्षा, ब्रह्म और भृगु जो कि मानव जीवन के लिए अत्यन्त ही उपयोगी हैं इस शोध प्रबन्ध के द्वारा उसे स्पष्ट किया गया कि जनसामान्य भी उपनिषदात्मक ग्रन्थों में रूचि ले सकें। इस कारण से मानव जीवन के हित में इस शोध कार्य का होना अत्यन्त ही जरूरी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- संस्कृत साहित्य का इतिहास रू श्री गैरोला, भू.136
- तैतरीयोपनिषद् रू शंकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2000] पृ0 04
- पाणिनीय शिक्षा 34–35
- ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित, मैक्समूलर सम्पादित चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1966
- ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित, मैक्समूलर सम्पादित चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1966
- ऋग्वेद भाष्य भूमिका, व्याख्याकार डॉ0 कमल नारायण शर्मा, स्वामी परांकुशाचार्य ग्रन्थमाला, पटना 1979 पृ0 48
- तैत्तिरीयोपनिषद्, शास्त्री राधेश्याम, मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 1978 शिक्षाध्याय 1/2
- तैत्तिरीयोपनिषद्, शंकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2000] पृ0 22
- तैत्तिरीयोपनिषद् रू स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, चौखम्भा संस्कृत संस्थान. वाराणसी 2013, पृ08
- शांकरभाष्य 1/14
- मुण्डकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 1919] 3/279
- शांकरभाष्य 3/2/17
- वृहदारण्यक भुति 4/4/22
- वृहदारण्यकोपनिषद्, शंकर भाष्य, आनन्दश्रम, पूना, 1927 3/18